ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. NO.- 159-163

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- I, Issues-23, YEAR- Jan.-March-2022

दलितों का हक और इंसाफ

प्रियेश कुमार तिवारी

शोध अध्येता– हिन्दी विभाग– अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा, (म0प्र0)

Received- 05 .02.2022, Revised- 10 .02.2022, Accepted - 12.02.2022 E-mail: aaryvrat2013@gmail.com

सारांशः– *'"मुझे उन लेखकों से बचाओ जो मानते हैं कि जीने का तरीका कोई मायने नहीं रखता. मैं यकीन नहीं कर पाती कि बुरा आदमी अच्छी किताब कैसे लिख सकता है। अगर कला हमें बेहतर मनुष्य बनाने की प्रेरणा नहीं दे पाती तो वह किस काम की। धरती हमें धैर्य नहीं सिखा पाती तो धरती किस काम की।" –एलिस वाकर*

कुंजीभूत शब्द– इंसाफ, दलितो का हक, निर्द्वंद्व, महाआख्यान, कतरा–कतरा, स्मृति, मानसिक अशांति, निर्वासन।

मन्नू भंडारी का रचना संसार आधी सदी तक फैला हुआ. उनकी पहली कहानी 'मैं हार गई' 1956 में भैरव प्रसाद गुप्त द्वारा संपादित पत्रिका 'कहानी' में और अंतिम कहानी 'गोपाल को किसने मारा' ज्ञानोदय 2013 में प्रकाशित हुई। नब्बे साल के जीवन में 50 साल का समय मन्नू जी के सक्रिय लेखन का समय है। किसी भी लेखक के लिए लेखन के इतने साल कम नहीं हुआ करते। इतने सुदीर्घ सालों में लेखक बहुत कुछ ऐसा रच जाता है जिससे उसकी पहचान मुकम्मल हो जाती है। हिंदी पाठक समुदाय ने मन्नू जी को खूब चाहा और सराहा। देश के तमाम विश्वविद्यालयों के हिंदी विभागों में उनकी रचनाएं पाठ्यक्रम में लगीं। उन पर शोध हुए. सिने–पटकथा लेखन में भी वह सफल साबित हुई। मन्नू जी उन विरले लेखकों में से एक हैं, जो सिनेमा और साहित्य दोनों में सफल रहीं।

मगर यह सब इतना आसान नहीं रहा। उनके सक्रिय लेखन के साल निर्द्वंद्व कभी नहीं रहे। उनके जीवन का फूल हमेशा कांटों से आबाद रहा। उनके सामने तमाम मुश्किल हालात पेश होते रहें। उनका जीवन दुख का महाआख्यान है, जिसने कतरा–कतरा उन्हें स्मृति भंग तक पहुंचा दिया। जैसे बाढ़ का पानी किनारों को कतर देता है, उसी तरह मानसिक अशांति के कारणों ने उनकी स्मृति को कुतर दिया। स्मृति भंग ने बेहद सर्जनशील लेखिका को लेखन से निर्वासित कर दिया। यह निर्वासन बेहद तकलीफ देने वाला रहा। खेती–किसानी बिना किसान और पढ़ाई–लिखाई से वंचित लेखक की तकलीफ दुनिया की सबसे असहनीय तकलीफों में से एक है।

बेहद परेशान कर देने वाली तमाम बातों के साथ मन्नू जी के साथ दो–एक अच्छी बातें भी हुई। सबसे अच्छी बात तो यही कि वह नौकरी करती थीं। देश के प्रतिष्ठित महाविद्यालय में प्रध्यापन करती थीं। जाहिर है नौकरी ने उनके समय को सोखा होगा। नौकरी की परेशानियों से भी दो–चार होना पड़ा होगा। इससे लेखकीय समय का नुकसान हुआ ही होगा, मगर उससे हासिल आर्थिक आजादी ने जहां एक ओर उन्हें मजबूत किया और वहीं दूसरी ओर लेखन की जमीन में आर्थिक आजादी के बीज को पनपने का मौका दिया। उनकी तमाम कहानियों में प्रेम और समर्पण के बीच नौकरी के स्पेस का द्वंद्व उनके जीवन अनुभव का द्वंद्व है। जाहिर है नौकरी ने मन्नू जी को खुदमुख्तार बनाया, जिसका असर उनके व्यक्तिगत जीवन के निर्णयों के साथ–साथ पात्रों के सर्जन और गठन पर भी दिखाई पड़ता है। यही कारण है कि उनकी तमाम कहानियों में नौकरी से आई बुलंदी और संषय का जिक्र मिलता है। कहीं–कहीं पति या प्रेमी के कहने या दबाव में नौकरी छोड़कर खांटी गृहस्थन बनने पर मन्नू जी का लेखकीय तंज भी दिखाई पड़ता है। 'नई नौकरी' ऐसी ही कहानी है। इस कहानी में एक जगह नौकरी से हासिल बुलंदी इस रूप में प्रकट है–''रमा पीछे खड़ी सामने आईने में पड़ते कुंदन के प्रतिबिंब को देख रही थी, उसे लग रहा था नई नौकरी के साथ कुंदन की सारी पर्सनेलिटी ही नहीं, बात करने का लहजा तक बदल गया है। कितना आत्मविश्वास आ गया है सारे व्यक्तित्व में! रौब जैसे टपक पड़ता है।'' मन्नू जी ने इस कहानी मे अधिकार के स्रोतों को बहुत बारीकी से उकेरा है।

संविधान ने आधुनिक भारत के लिए भविष्य का दरवाजा खोल दिया। पिछड़ों और औरतों के लिए सदियों से बंद अवसर के दरवाजे खुलने लगे। औरतें विश्व–विद्यालयों, महाविद्यालयों और दफतरों में दिखाई पड़ने लगीं। पुरानी मान्यताओं को आधुनिक मूल्यों से चुनौती और कहीं–कहीं शिकस्त मिलने लगी। नई चीजों ने औरतों को बहुत कुछ दिया तो बहुत कुछ हर भी लिया। दहलीज के बाहर कदम रखती औरत की सही तस्वीर मन्नू जी की रचना संसार की उपलब्धि है। उनकी कहानियां सदियों से बंद दरवाजे के बाहर कदम रखती औरत के प्रेम, संशय, प्रेम में छल और निर्णय तक पहुंचने के संघर्ष से लैस हैं। उनके द्वारा रचे गए चरित्रों का मनोविज्ञान आजाद मुल्क के औरत का मनोविज्ञान है, जिसमें कास्ट एंगल तो नही (नमक कहानी और महाभोज उपन्यास अपवाद) मगर क्लास एंगल जरूर है। तमाम कहानियां गवाह हैं कि दांपत्य जीवन में पूंजी के दाखिल होने से, किस तरह रिश्ते दरकने लगते हैं।

अनुरूपी लेखक/संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- I, Issues-23, YEAR- Jan.-March-2022

प्रस्तुत आलेख उनकी तीन कहानियों पर विचार करने का विनम्र प्रयास भर है। मन्नू जी की पहली कहानी 'मैं हार गई' है। सत्ता, नेता और जनता की परवशता को केंन्द्र में रखकर इस कहानी को बुना गया है। आगे बढ़ने के पहले कहानी के पहले पैराग्राफ की कुछ पंक्तियों पर गौर करें–"एक पिता अपने बेटे के भविष्य का अनुमान लगाने के लिए उसके कमरे में एक अभिनेत्री की तस्वीर, एक शराब की बोतल और एक प्रति गीता की रख देता है और स्वयं छिपकर खड़ा हो जाता है। बेटा आता है और सबसे पहले अभिनेत्री की तस्वीर को उठाता है। उसकी बाछें खिल जाती हैं। बड़ी हसरत से उसे वह सीने से लगाता है, चूमता है और रख देता है। उसके बाद वह शराब की बोतल से दो–चार घूंट पीता है। थोड़ी देर बात मुंह पर अत्यंत गंभीरता के भाव लाकर, बगल में गीता दबाए वह बाहर निकलता है। बाप बेटे की यह करतूत देखकर घोषणा करता है, 'साला यह तो नेता बनेगा'।"

ऊपर के उद्धरण में जिस टोटके का जिक्र हुआ है, वह आज भी स्थापित सत्य है। नेता के विषय में ऐसी मान्यता सामान्य जनमानस को विरोध करने से रोकती है। ऐसी मान्यताओं से बुराई आवश्यक बुराई के रूप में रूढ़ हो जाती है। इस तरह की मान्यताएं उस नाबदान की तरह होती हैं, जिसे लोग नाक पर रूमाल रखकर लांघते हुए निकल जाते हैं। ऐसी फ्रीज मान्यताओं या स्वीकृतियों से आंदोलनजीविता अथवा सकारात्मक बदलाव की संस्कृति को ठेस पहुंचती है। स्वीकृति पाकर आगे बढ़ने वाली ऐसी रूढ़ियां पूरे देश को नुकसान पहुंचा रही हैं। निश्चित ही ऐसी प्रवृत्तियां आजकल के वाट्सअप यूनिवर्सिटी का आदि रूप हैं।

मन्नू जी की यह कहानी आत्म कथात्मक शैली में लिखी गई है। उनकी कई कहानियां इसी शैली में लिखी गई हैं। आत्मानुभूति की यह शैली कौशलयुक्त उपलब्धि है, जिससे रचनाओं में संवेदनात्मक विवके को रचने में आसानी होती है। मन्नू जी की तमाम कथा रूढ़ियां इस कहानी में मौजूद हैं, जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं–पात्रों से लेखक का संवाद, पात्रों के भाग्य का निर्णय स्वयं लेखिका द्वारा, हास्य–व्यंग्य प्रधान संवाद भंगिमा और हालात से पैदा हुई दिक्कतों का सर्जनात्मक उपयोग।

कहानी 'मैं हार गई' जब प्रकाशित हुई तब देश में संविधान लागू हुए छह साल चुके थे। स्वयं मन्नू जी पच्चीस साल की थीं और कोलकाता में अध्यापन कर रही थीं। यह कहानी एक आत्मनिर्भर और जिम्मेदार लेखिका द्वारा लिखी गई है। एक युवा जिस तरह का देश और जैसा नेता चाहता है, वह सपना इस कहानी के केंद्र में है। लोकतंत्र का मायने होता है जनता की नुमाइंदगी करने वाली सरकार, जो जनता द्वारा चुने हुए, जनप्रतिनिधियों से बनती है। कहानी के केंद्र मे केवल नेता ही नहीं, बल्कि उस विकल्प के अभाव से उपजी निराशा भी है, जिसे जनता के सामने उपस्थित होना चाहिए था, ताकि यह (जनता) अच्छा नेता चुनकर संसद में भेज सकती। इस तरह यह कहानी मनुष्यता के विकल्प के अभाव की कहानी है और लेखक की विवशता लोकतंत्र की विवशता है. बहुत ही खामोशी से यह कहानी निम्न वर्ग और उच्च वर्ग की त्रासदी को सामने लाती हुए लोकतंत्र के स्वप्न भंग के स्थल पर समाप्त होती है. निश्चित ही यह कहानी लोकतंत्र के यूटोपिया को सामने लाती है और जता जाती है कि लोकतंत्र के सही मायनों के सच होने तक नागरिक अधिकार और सामाजिक न्याय के तमाम रास्तें बंद ही पड़े मिलेंगें।

कहानी कुछ मूक प्रतीकों और संकेतों में बुनी हुई है। लेखिका मनोनुकूल सारे अच्छे गुणों से युक्त नेता का जन्म पहले एक निर्धन परिवार में कराती है। शुरू–शुरू में शिशु नेता बिल्कुल वैसा ही बनता प्रतीत होता है, जैसा लेखिका चाहती है। बाद में, जब वह बड़ा होता है और परिवार की जिम्मेदारी कंधे पर आती है, तो उसके सरोकारों और मानवीय मूल्यों का दायरा सिकुड़ने लगता है। नेता की चेतना समष्टि से व्यष्टिजन्य होती जाती है। अपने नेता को परिस्थितियों के आगे नतमस्तक देखकर लेखिका समझाती है, "जानते नहीं, नेता लोग कभी अपने परिवार के बारे नहीं सोचते, वे संपूर्ण राष्ट्र के बारे में सोचते हैं. तुम्हें मेरे आदेश के अनुसार चलना होगा। जानते नहीं हो, मैं तुम्हारी सृश्टा हूं, तुम्हारी विधाता।"

लेखिका के इस समझाइश पर उसका मानस नेता कहता है, "यह सब तो ठीक है पर मैं अपनी अंधी बूढ़ी मां की दर्दभरी आहो की उपेक्षा किसी भी मूल्य पर नहीं कर सकता. तुम मुझे कही नौकरी क्यों नहीं दिला देतीं? गुजारे का साधन हो जाने से मैं बाकी सारा समय सहर्श देख–सेवा में लगा दूंगा. पर पहले मेरे पेट का कुछ प्रबंध कर दो।"

अपने नेता की ऐसी दुर्गति और दीनता पर लेखिका इस निर्णय पर पहुंचती है कि क्यों न वह अपने पिताजी के विभाग मे कोई नौकरी दिलाकर नेता को लाचार होने से बचा ले? अब लेखिका अपने पिताजी के दतर पर नजर डालती है, तो पाती है, "पिताजी की उदार नीति के कारण कोई जगह खाली भी तो रहने पाए! देखा तो सब जगह भरी हुई थीं। कहीं मेरे चचेरे भाई विरजामान थे, तो कहीं फुफेरे। मतलब यह कि मैं उसके लिए कोई प्रबंध न कर सकी। उसका मुंह तो चीर दिया, पर उसे भरने को कोई प्रबंध न कर सकी। हारकर उसने मजदूरी करना शुरू कर दिया। जमींदार की नई हवेली बन रही थी, वह उसी में ईंट ढोने का काम करने लगा। जैसे–जैसे वह सिर पर ईंटें उठाता, उसके अरमान नीचे को घसकते जाते"

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- I, Issues-23, YEAR- Jan.-March-2022

लेखिका द्वारा उसके पिता के विभाग की पैमाइश देश में व्याप्त भाई–भतीजेवाद का एक ग्राह्य रूपक है। लेखिका के मानस नेता के सामने सबसे बड़ी समस्या भूख की है और हम जानते हैं भूख आदमी को गरिमाहीन बना देती है। असहाय भूखा आदमी भीख तक मांगने से नहीं हिचकिचाता। भाषा विज्ञान की दृष्टि से विचार करने पर पता चलता है कि भूख और भीख में गहरा नाता है। दोनों शब्द एक ही बिरादरी के ठहरते हैं।

मन्नू जी के मानस नेता की समस्या बहुत पुरानी है। भूख और गरीबी से परेशान मानव के द्वंद्व की तमाम कथाएं भारतीय समाज ही नहीं विश्व बिरादरी में कही–सुनी जाती हैं। एक कथा बुद्ध के जीवन से जुड़ी हुइ है। एक बार बुद्ध अव्वाली गांव गए हुए थे। गांव के लोगों में बुद्ध के उपदेश सुनने की होड़ मच गई। उन लोगों में गांव का एक गरीब किंतु कर्मठ किसान भी था। वह भी बुद्ध का संदेश सुनने पहुंचा मगर उसका मन लगा नहीं रहा था, क्योंकि उसका बैल खो गया था। वह तय नहीं कर पा रहा था कि तथागत का उपदेश सुने अथवा बैल की खेज करे। उपदेश सुनने वाले के मन में खोया हुआ बैल बार–बार खलल डाल रहा था। बैल के अभाव में खेती का भविष्य अंधकारमय दिखाई पड़ने लगा था। बैल के अभाव का कनेक्शन डायरेक्ट भूख से जुड़ता प्रतीत होते देख, वह परेषान हो गया। अंततः बैल उपदेश पर भारी पड़ा और किसान बैल ढूढ़ने निकल गया।

तथागत के जीवन की यह कथा बताती है कि भूख मिटाने का साधन उपदेश सुनने से अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि साधन मनुष्य सकर्म बनाता है। लेखिका का मानस नेता जब मजदूरी करने लग जाता है, तो उससे भी यही निष्कर्ष निकलता है कि किसी भी जीव के लिए भूख से मुक्ति का जुगाड़ हर मुक्ति से महत्वपूर्ण है साथ ही यह भी स्पष्ट होता है कि परिस्थितियां गरीब आदमी को नेता नहीं बनने देतीं। निर्धनता अवसर को न्यून कर देती है। आखिर असफलता के सभी अंधेर पुंज इसी गरीबी से पूंजी और ऊष्मा जो पाते हैं।

निर्धनता में पैदा हुए नेता से निराश होकर मन्नू जी अबकी बार एक अमीर खानदान में में अपने मानस नेता को पैदा कराती हैं। शुरू–शुरू में अमीर खानदान में पैदा हुआ शिशु नेताओं के उच्च गुणों से सम्पन्न सबका मन मोहता रहता है, मगर जैसे–जैसे वह वयस्क होता जाता है, वैसे–वैसे उसकी आदतें बिगड़ती जाती हैं। लेखिका अपने मानस नेता के पतन से चिंतित होकर उसे समझाती है, "एक बार अंतिम चेतावनी देने के ख्याल से ही मैं इस समय तुम्हारे पास आई हूं तुम्हारा यह सर्वनाश देखकर, जानते हो मुझे कितना दुख होता है?"

लेखिका की बात सुनकर मानस नेता झल्ला जाता है और कहता है, "अरे जा न! यह क्या तुमने हर समय नेतागीरी का पचड़ा लगा रखा है? कहां तुम्हारी नेतागीरी और कहां छमिया का छपाका! देख लो तो बस सरूर आ जाए"

इस तरह से लेखिका समाज के दोनों तबकों में सर्वोत्तम गुणों वाले नेता पैदा कराती है परंतु एक उम्र में आकर एक नेता जिम्मेदारी में दबकर और दूसरा ऐशो–आराम की लालसा में फंसकर लेखिका को असफल बनाता है। इसीलिए कहानी का नाम 'मैं हार गई' एकदम सटीक है।

भैरव प्रसाद गुप्त को यह कहानी प्रगतिशील और प्रयोगशील दोनों लगी होगी, जो है भी। भैरव प्रसाद गुप्त ने इस कहानी के माध्यम से नए–नए लोकतांत्रिक भारत में लोकतंत्र का भविष्य भी देख लिया होगा क्योंकि कहानी के बिल्कुल अंत में एक संकेत है–"अब तो इतनी हिम्मत भी नहीं रही कि एक बार मध्यम वर्ग में अपना नेता उत्पन्न करने का फिर से प्रयास करती।" यह संकेत सुविधा के जंजाल में फंसते और सरोकारहीन होते बंजर मध्यवर्ग की घोषणा है। लेखिका द्वारा किया गया संकेत अब सच साबित होने लगा है। दूसरी बात यह कि कालजयी समय में कालजयी पात्र जन्म लेते हैं। बौनेसमय के पात्र भी बौने ही हुआ करते हैं। यही कारण है कि तमाम कोशिश के बाद भी लेखका एक गुणवान और नैतिक नेता को विकसित नहीं कर पाती। "मैं हार गई" कल्पना और यथार्थ के द्वंद्व से उपजी कहानी है। मन्नू जी दांपत्य जीवन में पूंजी के प्रवेष से आई तब्दीलियों पर पैनी नजर रखने वाली कथाकार हैं। उनकी कई कहानियां पूंजी और औरत के द्वंद्व को सामने लाती हैं। और दिखती हैं कि कैसे पूंजी की छुरी औरत को धीरे–धीरे हलाल करती जाती है और वह जान भी नहीं पाती। 'नई नौकरी' ऐसी ही कहानी है। आगे बढ़ने से पहले कहानी के एक अंश को देखना जरूरी जान पड़ता है–"डॉ0 फिशर ने कुंदन को नौकरी ही नहीं दी थी, धीरे–धीरे वे उसकी सारी जिंदगी के पैटर्न को भी तय कर रहे थे। उसे दो–तीन क्लबों का मेंबर बनना पड़ा। आए दिन दूसरी कंपनियों के बड़े–बड़े अफसरों को इंटरटेन करना पड़ता। विदेशियों को हिंदुस्तानी खाना खिलाने के बहाने उसे घर में ही बड़ी–बड़ी पार्टियां करनी पड़तीं और तीन महीने पहले उसे कंपनी की ओर से लैट मिल गया। उसने सोचा, वह अपने इस नए घर को निहायत ही ओरियंटल ढंग से सजाएगा, विदेशियों के लिए तो यही नवीनता होगी..... घर के लिए नया फर्नीचर बनवाने, चुन–चुनकर चीजे खरीदने के लिए दोनों में से किसी के पास भी समय नहीं था। कुंदन चहता था यह काम रमा को करना चाहिए, क्योंकि यह उसी का काम था..... फिर उसकी सुरूचि और सुघड़ता के तो हल्ले भी थे मित्रों के

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- I, Issues-23, YEAR- Jan.-March-2022

बीच में....."प्रस्तुत अंश 'नई नौकरी' से लिया गया ह। इस अंश को देखने से तीन किरदार सामनेआते हैं–डॉ0 फिशर, कुंदन और रमा डॉ. फिशर तरक्की का वह सूर्य हैं, जिनके इर्द–गिर्द ग्रहों की तरह कंपनियों के कुंदनों की पूरी जिंदगी घूमती रहती है। इस सौरमंडल में रमा की हैसियत उस उपग्रह की तरह है, जिसकी नियति अपने ग्रह अर्थात कुंदन के इर्द–गिर्द चक्कर लगाने की है। भारतीय समाज व्यवस्था में हर किसी का स्थान फिक्स है, जो पढ़ाई–लिखाई और औरत के ओहदेदार होने पर भी परिवर्तित नहीं हुआ। औरतें उपग्रह होती हैं, जो अपने पति रूपी ग्रहों का चक्कर लगाने के लिए गढ़ी जाती है। पढ़ाई–लिखाई और समझदारी बराबर होने के बावजूद शक्ति के स्रोत से रमा की दिशा उसके पति कुंदन के एकदम उलट है। यह व्यवस्था इस तरह से डिजाइन की गई है, जिसमें कुंदनों को निरतंर प्रगति पथ पर बढ़ते जाना है और रमाओं को अपना हासिल खोकर और घर–गृहस्थी में रमकर अंततः फ्रेंज कॉटा की कहानी 'द मेटामार्फोसिस' की तरह व्यक्तित्वहीन होते जाना है। संभवतः इसी जटिलता के कारण यह मुहावरा प्रचलन में है–'मरने के बाद ही औरत के पांव देहरी के बाहर निकलते हैं.'

विवाह बंधन तो है ही। यह एक मूक समझौता भी है जिसकी पूरी कीमत औरत को चुकानी पड़ती है। इस कीमत को चुकाने में औरत का व्यक्तित्व ही चुक जाता है। इसलिए इस कहानी की रमा को संज्ञा नहीं, बल्कि विषेशण रूप में ग्रहण करना चाहिए। अपनी जगह यह बात भी पूरी तरह अनुप्रमाणित है कि भारतीय समाज में औरतों का जन्म संज्ञा से विषेशण बनने के आख्यान से अधिक कुछ नहीं है। हमारे समाज में औरतों की कई पीढ़ियां फलाने की मां, ढेकाने की काकी और भाभी कहते–सुनते मिट्टी में मिल गईं।

यह कहानी पूंजीवाद से निर्मित एक न्यूक्लियर परिवार कहानी है। विदित है कि भारत में पूंजीवाद ने सामंतवाद का दामन थामकर आधुनिकता का दम निकाल दिया। रमा की त्रासदी बेदम होते आधुनिकताबोध की त्रासदी के अतिरिक्त आखिर क्या है?

'नई नौकरी' कहानी का शीर्षक बहुत अर्थपूर्ण है। कहानी बड़े सलीके से नौकरी करने वाली औरत के बेरोजगार होने के व्यूह को सामने–लाती है। दरअसल, रोजगार से बेरोजगार होना ही 'नई नौकरी' कहानी का प्लॉट है। कहानी में विवाह पर सवालिया निशान लगाया गया है। कहानी से पता चलता है कि विवाह औरत को व्यक्तित्वहीन बनाने वाली संस्था का नाम है। कहानी के बाहर का सच भी यही है।

विवाह में बार–बार दांपत्य प्रेम की ख्वाहिश की जाती है। दांपत्य प्रेम एक तरह की बेहोश करने वाली दवा है। बेहोशी इस दवा की खोज में अंगों के व्यापार में बहुत लाभ हुआ। सुन्न करने वाली यह दवा मरीज को संज्ञाहीन बना देती है और बिना पीड़ा पहुंचाए अंगों को निकाल लिया जाता है। भारतीय परिवारों में पति का प्रेम कई बार बेहोश करने वाली दवा का काम करता है, जिसके वशीभूत होकर पत्नी (औरत) राजी–खुशी से हलाल हो जाती है। दांपत्य में दर्शाए जाने वाले प्रेम–मनुहार और समर्पण के नाम पर अनगिनत औरतें हर दिन हलाल होती हैं।

रमा नौकरी छोड़ चुकी है। वह पूरी तरह से घर को सजाने–धजाने में लिप्त है। कुंदन खुश है। नौकरी छोड़ घर संभालती रमा उसे बहुत भा रही है। वह जैसा चाहता था, वैसा ही हुआ। ऐसे में एक दिन कुंदन तनख्वाह रमा को सौंपता है। तनख्वाह सौंपने के दौरान जो गतिविधियां सम्पन्न होती हैं और जो बातचीत होती है, वह इस प्रकार है–"भीतर की जेब से नोट के दो बंडल निकाले–एक बड़ा, एक छोटा।"

"अरे यह क्या, तनख्वाह ले आए? आज क्या पहली तारीख हो गई? रमा को आजकल तारीख और दिन का कुछ ख्याल ही नहीं रहता।"

"ये आया, बैरा और खानसामा के है। अस्सी, अस्सी और सौ।" छोटा बंडल बढ़ाते हुए कुंदन ने कहा।

"और यह तुम्हारा है।" फिर जरा–सा झुककर बोला।

"अब जो मुनासिब समझो, इस गुलाम को पान–सिगरेट के लिए दे देना।" और हंस पड़ा. रमा भी मुस्करा दी।

इन संवादों से पता चलता है कि शहद–मिश्री घुली जुबान से एक मर्द ने औरत पर फतह हासिल कर ली और विकल्पहीन औरत के पास लाचार हंसी के अलावा कोई दूसरा चारा नहीं।

मन्नू जी की कहानियां की चर्चा करते हुए उनकी बेहद चर्चित और अलग तरह की कहानी 'नमक' को नहीं छोड़ा जा सकता। यह कहानी गुलामी के संधि–पत्र की कहानी है। कहानी में आए संवाद शोषक और शोषित समाज के मनोविज्ञान को उघाड़कर रख देते हैं जिसे समझने के लिए इस कहानी में आए इस संवाद से गुजरना बेहद जरूरी है–"ठाकुर साहब की दया से ही आज मैं हूं, तेरा बाप है, तू है और आगे तेरे बेटे–पोते भी होंगे. सो एक बात गांठ बांध लेना बेटा कि हमारी रगों में लहू नहीं, हवेली का नमक बहता है। हवेली के लिए कभी जान भी देनी पड़े तो हिचकना मत। जान देकर भी हवेली के

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- I, Issues-23, YEAR- Jan.-March-2022

ऋण से ऋण नहीं हो सकते हम।'' यह कहानी सन् 1996 में इंडिया टुडे के साहित्य विशेषांक में प्रकाशित हुई थी। कथ्य, भाशा और व्यंग्य की दृष्टि यह कहानी प्रेमचंद की 'ठाकुर का कुंआ' की याद दिलाती है। हां, यह जरूर है कि इस कहानी में छुआछुत का लेवल प्रेमचंद वाली कहानी से थोड़ाकम और भिन्न जरूर है, मगर आंतरिक तनाव व तीव्रता में कमी नहीं है। कहानी में दिखाया गया है कि षोशक और शोषित दोनों प्रगति पथ पर प्रशस्त हैं. शोषक शोषण का विस्तार करता है और शोषित पहले से अधिक शोषित होने की क्षमता अर्जित करता है। कहानी में इस प्रगति को बहुत सधे लजों में दर्शाया गया है, सत्तर गांव तक विस्तार का अर्थ है सत्तर गांव तक गुलामी का विस्तार यह कहानी ऐसे विजय की कहानी है, जिसमें पराजित लोग विजेता से प्रेम करते हैं। पराजितों द्वारा विजेता को इतना चाहा जाता है कि ''छोटे कुंवर की गाड़ी जब अहाते में घुसे और वे गाड़ी से उतरें तो धूल का एक जर्रा भी उड़कर उनकी देह पर नह लगे।'' ऐसा इसलिए है, क्योंकि पराजितों के जिस्म में वफादारी का नमक लहू बनकर बह रहा है। गुलाम मानसिकता वाली ऊर्वर भूमि पर ही 'लार्जर दैन लाइफ' टाइप का करिश्माई नेता पैदा हुआ करते हैं। करिश्माई नेता सामंवाद का उत्तर संस्करण हैं। आधुनिक राजनीति और सामंतवाद के गठजोड़ से लोकतंत्र को खतरा है, क्योंकि इस गठजोड़ से पैदा हुआ नेता, खुद को जन नेता नही, खुदा समझता है। खुदा और बंदों की दुनियां आदिम कथाओं में तो जंचती है, मगर नागरिक और लोक कल्याणकारी राज्य के लिए इस तरह के नेता विष हैं। खुदा और बंदों के बीच के ताल्लुकात सुनने में अच्छे–भले लगते हों मगर खुदा की रियासत (जो एक तरह की सियासत है) में बंदे की औकात आदमी तक की भी नहीं रह पाती। खुदा की सियासत का बंदा सांस लेने को जिंदगी और खुदा की नेकनीयती मान बैठता है। बंदों में जड़ संतोष भावना उन्हें नागरिक बोध से परे ले जाती है। 'हाड़–तोड़ मेहनत के बदले में सबको पेट भरने को अन्न, तन ढंकने को कपड़ा और सिर छुपाने को छाजन तो मिलता ही है। पांच हाथ की अस काया को और चाहिए ही क्या भला!'' खुदा की रियासत और राज्य की सियासत में यह अंतर है कि खुदा के प्रांगण में बंदों के जिस्मों को नहीं, रूहों को जाना होता है, जबकि राज्य भरे पूरे आदमी जो सेचता, समझता और सवाल करता है।

करिश्माई नेता राज्य को भी रूहानी रूप में कायम करना चाहता है। उसे आदमी नहीं बंदों की जरूरत पड़ती है। भीमा और उसके परिवार ने बंदों का ओहदा हासिल कर लिया है। 'नमक' कहानी अपने क्राट और कांटेंट में मन्नू जी के मिजाज की ही कहानी है। इस कहानी का कलेवर उनकी दूसरी कहानियों से अलग सिर्फ भीमा कहार का पत्र के रूप में चयन के कारण है। भीमा कहार के चयन से दूसरे अहम किरदारों को रचाने –बसाने का काम आसान हो गया है। मन्नू जी द्वारा सधे–सधाए रास्ते पर चलने के कारण यह कहानी दलित पृष्ठभूमि की होने के बावजूद उतनी प्रखर नहीं हो सकी, जितना इसे होना चाहिए था। दलित कहानी के बरक्स यह कहानी कमजोर है और इसका कारण यह है कि स्त्री जीवन के अनुभवों की काया से दलित जीवन और संघर्श की त्रासदी को उपजाने का प्रयास किया गया है। एलिस वाकर की तरह ही मन्नू जी भी मानती थीं कि ईमानदार और सादे आचरण वाला लेखक ही अच्छी रचना रच सकता है और ऐसा है भी ईमानदार लेखक का नैतिक बल और विवेक उसे किसी घुमाव और जोर–अजमाइश की भूल–भुलैया में फंसने से बचा लेता है। जिससे उसका सीधा साबका पाठकों से होता है। मन्नू जी की लेखकीय सादगी, ऊष्मा और विवके उनकी ईमानदारी की उपज है। यही कारण है कि उन्होंने जब लिखा और जो लिखा, उसे पाठक का प्यार और आदर मिला।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. भंडारी, मन्नू : ''महाभोज'' सन् 1979
2. चन्द्र, जगदीशः धरती धन न अपना
3. नैमिशराय, मोहन : अपने–अपने पिंजरे (भाग–एक 1995 ई0 भाग–दो सन् 2000)
4. बाल्मिकी, ओम प्रकाश : जूठन सन् 1997
5. चौहान, सूजन पाल : तिरस्कृत सन् 2002
6. राम, डॉ. तुलसी : मुर्दहिया सन् 2010
7. राहुल सांकृत्यायन : वोल्गा से गंगा तक
8. उग्रः फागुन के दिन चार
9. राघव, रांगेय : कब तक पुकारूं
10. नाथ, फणीश्वर, ''रेणु'' : मैला आँचल, परती परिकथा, पल्टू बाबू रोड
11. नागर, अमृतलाल : सतरंज के मोहरे, अमृत और विष
12. भट्ट, उदयशंकर : लोक–परलोक

*****